*Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*

*Vol. VIII, Issue No. XVI, Oct-2014, ISSN 2230-7540*

# श्री अरविन्द के योग समन्वय का ऐतिहासिक व दार्शनिक मूल्यांकन

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

*Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*
*Vol. VIII, Issue No. XVI, October-2014, ISSN 2230-7540*

# टैगोर के साहित्य में शिक्षण सिद्धान्त, विधियाँ तथा भाषा का मूल्यांकन

**Preeti Chauhan**

Research Scholar, Monad University, Hapur (U.P.), India

***सार :-*** *भारतवर्ष में वेद-उपनिषद आदि के आधार पर हिन्दुमतानुयायियों में शिक्षा कंठरस्थीकरण के आधार पर ही चलती रही, जिसकी कठिनता एवं विदेशी आक्रमणों एवं शिक्षा के एकांशी स्वरूप, विभिन्न धर्मानुयायियों के आक्रमण एवं धार्मिक प्रतिस्पर्धा, इर्ष्या तथा शिक्षा की महत्ता कम आंकने व शिक्षा प्रचार प्रसार के साधनों की कमी के कारण कोई सार्थक शिक्षण विधियां प्रकाश में नहीं आयी। शंकराचार्य जी के पश्चात मूल्य शिक्षा शास्त्री के रूप में महर्षि दयानन्द का नाम लिया जाता है। जिनकी शिक्षण विधियों को कोई स्पष्ट स्वरूप सामने नहीं आता, क्योंकि आदि शंकराचार्य और महर्षि दयानन्द जीव जगत और आत्मा, ईश्वर (परआत्मा) और प्रकृति के सम्बन्ध में व्याख्यान अधिक हैं जो आध्यात्मिक और काल्पनिक, मानसिक संवेगों की प्रकृति में आभाष करके व्यक्त करते हैं।*

----------X----------

## शिक्षण सिद्धान्तः-

टैगोर की विचारधारा के अनुसार शिक्षण-विधि कुछ सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए तभी वह शिक्षा लाभप्रद हो सकती है। ये सिद्धान्त निम्नवत हैं:-

**प्रगतिशील सिद्धान्तः-** सभी प्रगति शिक्षाविदों के दर्शन की भाँति टैगोर की पद्धति का दर्शन शिक्षा की प्रक्रिया को जीवन्त बनाये रखना है। ये किसी ऐसी शिक्षण-पद्धति के दृढ़ आलोचक हैं जो यांत्रिक, बुद्धिरहित एवं नीरस व मृत हो। अपपे समय के लाक्षणिक देशी स्कूलों के विषय में इन्होंने आलोचना की कि वे कमोवेश शिक्षा देने की फैक्टरी हैं जो शिक्षा की यांत्रिक पद्धति के द्वारा एक सा उत्पादन करती हैं यानि भौतिक आदर्शों से प्रेरित होकर एक ही प्रकार के विद्यार्थी निकलती हैं। ये संस्थायें परीक्षायें उत्तीर्ण करने तथा नौकरी प्राप्त करने के एक मात्रा उद्देश्य से पूर्ण रूपेण प्रेरित हैं। इनकी परीक्षाएं, अस्वभाविक पाठ्यक्रम एवं विदेशी भाषा के माध्यम से होती है। अपने बचपन में टैगोर ऐसी शिक्षण पद्धति से भाग गये तथा अपने शैक्षिक विचारों एवं कार्य-कलापों में ये अत्यंत आग्रही (जिद्दी) रहे।

टैगोर का यह सिद्धान्त उन प्रकृतिवादियों के विचारों से मेल खाता हुआ प्रतीत होता है जिन्होंने शिक्षा को मृत औचारिकता से बचाने, प्रकाश तथा जीवन की शुद्ध हवा में श्वास दिलाने तथा मुख्य रूप से बालक की स्वाभाविक रूचियों एवं प्रवृत्तियों के मौलिक आधार पर इसे स्थिर करने की खोज की। इसलिए टैगोर ने शिक्षण-पद्धति में विद्यार्थी की रूचि, रूझान तथा बुद्धि को ध्यान में रखने पर बल दिया।

**टैगोर का मनोविज्ञानिक शिक्षण सिद्धान्तः-** टैगोर ने अपनी शिक्षण विधियों को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित किया, जो शिक्षा सिद्धान्त में बहुत समय पश्चात् मुख्यतः ''हरबर्ट मनोविज्ञान का प्रभाव'' के रूप में मान्य हुई और अब आधुनिक अध्यापन विज्ञान में इसका एक सामान्य स्थान बन गया है। टैगोर के अनुसार शिक्षा का आधार व्यावहारिक तभी हो सकता है जब उसे मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया जाय। इनके अनुसार शिक्षा तभी सुदृढ़ हो सकती है जब वह ''निकट से दूर की ओर'' तथा ''ज्ञात से अज्ञात की ओर'' बढ़े...., हम ज्ञात को पकड़कर ही अज्ञात तथा अदृश्य को प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमारा अधिगम, मुख्यतः जो चारों ओर अस्तित्व में नहीं है तथा जो हमारे सम्मुख उपस्थित नहीं है, पर आधारित रहते रहेंगे तो प्राप्त ज्ञान क्षीण हो जायेगा। यदि हम परिचित को पूर्णतया समझते हैं तो हम अदृश्य एवं अपरिचित का ज्ञान अनुभव कर सकते हैं। वास्तविक अधिगम स्पष्ट प्रभाव को सुगम बना देता है, जिसके अभाव में खोज की शक्तियाँ उचित प्रकार से कार्य नहीं कर सकती। इन्होंने बलपूर्वक कहा कि वास्तविकता से परित्यक्त हमारा मस्तिष्क हृदय अथवा कल्पना कुछ भी हो, प्रत्येक वस्तु क्षीण एवं विकृत हो जाती है। इसलिए ये वास्तविक जीवन व प्रकृति में प्रत्यक्ष स्रोतों से ज्ञान एकत्रित करने का तर्क देते हैं। जिससे हमारा अधिगम पर्याप्त मात्रा में प्रेरित होने के साथ-साथ हमारा ज्ञान भी वास्तविक एवं स्थायी हो जाता है। इसलिए टैगोर अवलोकन पर बल देते हैं क्योंकि इससे ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है जो पुस्तकों में उपलब्ध नहीं है।

**करके सीखने का सिद्धान्तः-** टैगोर की शिक्षण पद्धति में ''करके सीखने'' के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया है। यह सिद्धान्त शरीर एवं मस्तिष्क के अभिन्न संबंध की दार्शनिकता पर आधारित है। जिसे टैगोर ने अपने ''शिक्षार हेरफेर'' में इंगित किया है। इन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि शारीरिक क्रियायें न केवल शरीर को प्रेरित करती हैं अपितु मस्तिष्क को भी भी शक्ति प्रदान करती हैं। इसी आधार पर इन्होंने संस्तुति की कि स्कूल के विद्यार्थियों के लिए कुछ हस्तकला व प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिये। इनके शब्दों में, ''यह मेरा दृढ़ मत है कि शारीरिक तथा मानसिक चेष्टा व शिक्षा में घनिष्ठ संबंध है। यदि इन दोनों में उचित समन्वय नहीं होगा तो हमारे जीवन की लय अव्यवस्थित हो जाएगी।''

इन्होंने शरीर तथा मस्तिष्क के उचित विकास हेतु ही नृत्य तथा अभिनय को शिक्षा का अंग बनाया। श्री निकेतन में उद्योग प्रधान शिक्षा देकर इन्होंने इसी सिद्धान्त को विकसित करना चाहा। किसी उद्योग के प्रशिक्षण द्वारा बालकों में स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता आदि गुणों का विकास होता है। श्रीनिकेतन की शिक्षा प्रणाली इनके इस विचार का प्रत्यक्ष उदाहरण है। शान्ति निकेतन में भी जो जीवन है, उसे देखने से स्पष्ट है कि प्रातःकाल के वैतालिक संगीत से लेकर पूरे दिन का कार्यक्रम शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं से पूर्ण हैं।

**सर्जनात्मकता का सिद्धान्तः-**शिक्षण-विधि में सर्जनात्मकता के सिद्धान्त को महत्वपूर्ण मानते हुए टैगोर ने कहा कि प्राचीन शिक्षा प्रणाली मुख्यतः सैद्धान्तिक प्राप्त करने तक सीमित थी। शनै-शनै इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी

www.ignited.in

अनिवार्य है जिससे मनुष्य विश्व में अपना सामंजस्य स्थापित कर कसे। व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए रचनात्मक क्रियाओं पर बल दिया गया। सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के विषय में टैगोर ने कहा कि इसके द्वारा मानव उसी प्रकार स्वतन्त्रता अनुभव करता है जिस प्रकार भगवान स्वयं मानव जाति की रचना करने में अपनी निजी स्वतन्त्रता अनुभव करते हैं और इस प्रकार से उनकी प्रकृति पूर्ण हो जाती है। इन्होंने विचार किया कि मानव जाति को अपने विश्व की रचना करनी है। और इसके द्वारा ही वे अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रख सकते हैं।

इनके अनुसार जब तब स्व अभिव्यक्ति के लिए प्रारम्भिक उत्तेजना, उत्पादक कार्यकलापों के माध्यम से पूर्णता को प्राप्त नहीं करती तब तक बालक का व्यक्तित्व पूर्णरूपेण पुष्पित एवं पल्लवित नहीं हो सकेगा, निराशा एवं असंतोष की गहना भावना सदा उसके साथ रहेगी तथा विकास में बाधा डालेगी। इसलिए टैगोर ने यथासम्भव बालक की सर्जनात्मक प्रेरणा को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए पूर्ण प्रोत्साहन दिया, इनके अनुसार व्यावहारिक एवं सौन्दर्य विज्ञान, व्यक्तिगत व सामाजिक, कला, संगीत, नृत्य, साहित्य एवं नाटकीय कलायें, उत्सवों त्योहारों, संगठनात्मक व स्वशासित क्रियाकलापों, हस्तकला तथा ग्रन्थ शिल्प व विभिन्न प्रकार की समाज सेवा से सम्बन्धित क्रिया कलापों के माध्यम ये बालकों को अपने व्यक्तितव के विकास हेतु प्रोत्साहन प्रदान किया जाना चाहिये। इन्होंने विशेष रूप से आग्रह किया कि बालकों की उत्पादन क्रियाएँ उनके शैक्षिक अधिगम के साथ-साथ ही चलनी चाहिये।

**अभ्यास का सिद्धान्तः-** टैगोर के अनुसार शिक्षण-विधि अभ्यास के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि क्रिया को बार-बार दोहराया जाये तो वह अधिक प्रभावपूर्ण तथा स्थायी हो जाती है। टैगोर का विचार है कि बालक जो सीख रहें हैं, तुरन्त अभिव्यक्ति द्वारा उसका प्रति अभ्यास कराया जाना चाहिये। क्योंकि ज्योंही हम एक बात सीखते हैं यदि तुरन्त ही उसकी अभिव्यक्ति कर लेते हैं तो हमारी धारणा स्पष्ट तथा ठोस हो जायेगी। इन्हें उस समय अत्यन्त प्रसन्नता हुई जब इन्होंने अपनी इस अवधारणा को सोवियत रूस के स्कूलों में व्यवहार में पाया।

**जिज्ञासा एवं रूचि का सिद्धान्तः-** टैगोर ने शिक्षण-विधि में रूचि व जिज्ञासा के सिद्धान्त को बहुत महत्व दिया है। जाग्रत जिज्ञासा व यौवन का चित्रा है और जिज्ञासा में कमी निर्जीवता का लक्षण है। असीमित जिज्ञासा की समृद्ध देशों की सफलता, शक्ति ओर समृद्धि का कारण उनकी जाग्रत औज और संकल्प शक्ति है। दूसरी ओर भारत में दुखद रूप से यह अनुपस्थित है। यदि शिक्षा जिज्ञासा जाग्रत नहीं करती तो वह सच्ची शिक्षा नहीं है। जीवन का अर्थ भी रूचि के पथ पर निरन्तर प्रगति है। वर्तमान समय में भारतीयों में मानव तथा ज्ञान दोनों के ही प्रति रूचि नहीं है। एक जटिल पाठ्यक्रम और शिक्षा के ऊँचे उद्देश्यों ने बचपन से ही बालकों की जिज्ञासा को कुचल कर रख दिया है। जिज्ञासा तभी जाग्रत की जा सकती है जब शिक्षक स्वयं जिज्ञासु हो। अधिकांश भारतीय छात्रा इसी कारण जिज्ञासु नहीं है क्योंकि उनके शिक्षकों में उनके व वातावरण के प्रति जिज्ञासा का अभाव है।

## टैगोर की शिक्षण विधियाँः-

शिक्षण विधियों संबंधी सिद्धान्तों के आधार पर टैगोर निम्नलिखित विधियों को उपयोगी मानते हैंः-

### स्वक्रिया शिक्षण विधिः-

शिक्षा के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के साथ-साथ ही मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का श्रीगणेश हुआ। इन विधियों का आधार पाठ्य विषय वस्तु के स्थान पर बालक की रूचियाँ व क्षमताएँ होती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बालक का सर्वोत्तम व सर्वाधिक विकास उसकी रूचि के अनुरूप कार्य प्रदान करके किया जा सकता है। तभी वह अपने प्राकृतिक रूप में विकास भी करता है। इनमें से एक स्वक्रिया विधि है। इसके अनुसार बालक किसी भी कार्य को स्वयं सम्पन्न करके भली प्रकार सीख सकता है क्योंकि उसका मस्तिष्क व शरीर दोनों क्रियाशील हो उठते हैं और वह कार्य व्यवहार में आने वाली बाधाओं से भी भली प्रकार परिचित हो जाता है। टैगोर ने इस विधि को बहुत महत्व किया। इन्होंने अपने शैक्षिक प्रयोगों का आधार व्यावहारिक प्रशिक्षण ही रखा।

क्रिया के माध्यम से बालक ज्ञान के साथ-साथ अनुभव भी प्राप्त करता है जो उसकी स्थाई पूँजी हो जाती है। इसलिए शांतिनिकेतन में हस्त कार्यों को महत्व प्रदान किया गया। टैगोर ने लिखा है कि क्रिया के माध्यम से शिक्षा पाठ्यक्रम का अंग है तो वह शिक्षण की एक पद्धति भी है। ये कहते हैं कि कक्षा में भी मैं अपने बालक एवं बालिकाओं को उछलने, पेड़ पर चढ़ने, भागने, किसी बिल्ली अथवा कुत्ते के पीछे दौड़ने अथवा फल तोड़ने की अनुमति दूँगा। टैगोर का मानना है कि मनुष्य मनः शारीरिक प्राणी है। वह जो भी शारीरिक क्रिया करता है उसका शरीर तथा मस्तिष्क दोनों पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए बालकों को क्रिया द्वारा सीखने के अवसर अवश्य ही दिये जाने चाहिए। इसलिए ये विद्यालयों में किसी न किसी दस्तकारी को अनिवार्य रूप से सीखने पर बल देते हैं। शारीरिक क्रिया को महत्व देने के कारण ही इन्होंने शिक्षण विधि में नृत्य, अभिनय आदि को स्थान दिया इसके साथ ही टैगोर पेड़ पर चढ़ने, कूदने, हँसने तथा चिल्लाने आदि जैसी क्रियाओं को भी शिक्षण पद्धति के अंग मानते हैं।

टैगोर की यह विधि ''करके सीखो'' के सिद्धान्त पर आधारित है। इनके अनुसार शारीरिक क्रिया मात्रा शरीर को ही क्रियाशील नहीं करती अपितु वह मस्तिष्क को भी शक्ति देती है। इसी आधार पर इन्होंने विद्यालय में किसी हस्तकौशल की शिक्षा पर बल दिया।

### प्रत्यक्ष शिक्षण विधिः-

आधुनिक शिक्षा के लिए यह पद्धति नवीन नहीं है, किन्तु टैगोर के समय में इनका प्रचलन बहुत कम रहा। इसकी गणना मनोवैज्ञानिक पद्धतियों में हुई। इस सम्बन्ध में टैगोर ने कहा कि छात्रों के सम्मुख विद्यमान यथार्थ वस्तुओं के सम्पर्क से उनकी अवलोकन तथा तर्क शक्ति का विकास होता है। इनके अनुसार शिक्षण-विधि यदि प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित होगी तो उससे निरीक्षण तथा तर्कशक्ति का विकास होगा। इसलिए प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन, प्रकृति का निरीक्षण करके तथा सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन, सामाजिक समस्याओं, घटनाओं एवं संस्थाओं के निरीक्षण से किया जाना चाहिये। टैगोर का मत है कि ''पुस्तकों का परित्याग कर जीवित मानव का अध्ययन ही शिक्षा है। इससे ज्ञान प्राप्ति के साथ ही हम कुछ सीमा तक ऐसी शिक्षा प्राप्त करते हैं जो पुस्तकों में उपलब्ध नहीं है।

टैगोर ने पुस्तकीय शिक्षा का विरोध करते हुए कहा कि पुस्तकें मस्तिष्क एवं जीवन के मध्य व्यवधान उपस्थित करती हैं तथा जीवन के तथ्यों के प्रति मस्तिष्क की नवीनता को कुण्ठित करती है। इनके अनुसार ''ज्ञान के लिए जीवन की प्रत्यक्ष साधना की अपेक्षा शान्ति निकेतन की चहल-पहल इसी भावना का फल है। वह पुस्तकीय क्षेत्र से बाहर होती है। टैगोर ने कहा, ''हम भूगोल पढ़ाने के लिए बालक को पृथ्वी से अलग कर देते हैं, वह व्याकरण पढ़ने का इच्छुक है परन्तु हम उसे कुछ बातों का नीरस इतिहास व तारीख पढ़ाते हैं।

### भ्रमण शिक्षण विधिः-

टैगोर ने सीखने की अत्याधुनि भ्रमण विधि का समर्थन किया। इनके अनुसार भ्रमण के समय पढ़ना सवोत्तम विधि है। भ्रमण के समय हमारी मानसिक शक्तियाँ सतर्क व क्रियाशील होती हैं, जिससे हम तथ्य को सरलता से समझ लेते हैं। इसमें मस्तिष्क व शरीर दोनों का सम्बन्ध होता

है और दोनों एक साथ क्रियाशील रहते हैं। इसलिए इन्होंने सचल विद्यालयों की कल्पना की तथा कहा कि इस पद्धति से बालक को वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप से देखने की सुविधा के साथ-साथ परिवर्तनशील दृश्यों एवं विभिन्न वस्तुओं के निरन्तर आगमन से हमारे मानसिक संकाय सदैव जागरूक एवं गृहणशील बने रहते हैं। इसके साथ ही इन्होंने कविता पाठ अथवा सस्वर चिन्तन की भी बात की क्योंकि छात्रा इस प्रकार आकर्षक वस्तुओं को अपनी अभ्यास पुस्तिका में अंकित तथा चित्रित कर सकता है। मैं पूर्णतः निश्चित हूँ कि यदि सम्पूर्ण देह तथा उसकी क्रियाएँ सचेष्ट हैं तो हमारी शिक्षा तीव्र गति से होती है।

टैगोर टहलते-टहलते शिक्षण को सवोत्तम प्रकार का शिक्षण मानते हैं। ये ऐसा केवल इसलिए नहीं मानते कि भ्रमण प्रत्यक्ष निरीक्षण के माध्यम से अधिगम को सुगम बना देता है अपित इसलिए, क्योंकि यह विभिन्न दृश्यों तथा आंतरिक एवं वाह्य लयमय गति के माध्यम से हमारी जाग्रत मानसिक अवस्थाओं को निरन्तर सक्रिया एवं प्राप्ति योग्य रखता है। ऐसा गतिशील अधिगम सजीव मानव प्राणी के लिए पूर्णतया लाभदायक है। इसके विपरीत बिना सूत्रापात के कक्षा में प्रदान की गई स्थित शिक्षा शरीर एवं मस्तिष्क के पृथकीकरण का कारण बनती है। अपने अद्वितीय शैक्षिक लेख ''आन्दोलन'' में टैगोर ने इन विचारों का पूर्ण रूप से स्पष्टीकरण किया है। उनके भाषण के संचित नोट्स एल्महिस्ट में अंकित है। वहाँ पर इन्होंने इस विचार की विस्तारपूर्वक व्याख्या की है कि विचार प्रक्रिया; प्रेरणा, गतिशीलता और शक्ति प्राप्त करती है, यदि उसके साथ शारीरिक गति भी है।

अधिगम प्रक्रिया में केवल शरीर के अंग (मस्तिष्क) को प्रयोग करने के लिए विवश करना उचित नहीं है। इन्होंने कहा कि भोजन करने तथा भोजन को पचाने की प्रक्रिया में सम्पूर्ण जीवन की स्वरसमता कार्य करती है जिसमें हृदय, नेत्रा, जिह्वा तथा कान अपना-अपना कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया तब होनी चाहिए जब तुम अपने पाठ पढ़ रहे हों अथवा लाभदायक सूचनायें प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हों। यह इस सिद्धान्त को प्रोत्साहन देता है कि टैगोर ने संस्तुति की, कि बच्चों को घूमते हुए जोर से पढ़ना अथवा विचार करना चाहिये तथा जब वे भ्रमण पर जा रहे हों अपनी नोट बुक साथ रखनी चाहिये तथा उसमें अपने चारों ओर के जीवन के सभी स्पष्ट विवरणों को चित्रित एवं अभिलिखित करते हुए अंकित करना चाहिये। गुरूदेव ने कहा कि मैंने अपनी निजी शिक्षण संस्था में भी इस प्रकार के क्रियाकलाप को आरम्भ किया। जिसमें भ्रमण करते हुए छात्रों के शरीर, मस्तिष्क, आँखों व कानों को अनुशासन में रखते हुए एक ही साथ लिखने तथा चित्रा चित्रित करने की गति प्रदान की। इन्होंने कहा कि आज भी यदि पाँच वर्षों के अध्ययन काल में विद्यार्थियों को सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कराया जाय तो उनकी शिक्षा अधिक दृढ़ हो सकती है। इसी दृष्टि से भारत में तीर्थ यात्राओं का विधान किया गया था।

## वाद-विवाद एवं प्रश्नोत्तर शिक्षण विधिः-

वाद-विवाद अथवा तार्किक पद्धति का प्रचलन वैदिक काल में सर्वाधिक रहा। जिसमें गुरू-शिष्य आमने-सामने बैठकर किसी विषय पर विचार विमर्श करते हैं। इस पद्धति में बालक दैनिक जीवन की समस्याओं के संबंध में वाद-विवाद करते हैं तथा उनका हल खोजते हैं। इस विधि का प्रयोग आदिकालीन शंकराचार्य तथा पाश्चात्य दार्शनिक सुकरात ने भी किया था। यह कक्षा की नीरसता को दूर करने के लिए तथा बालकों की जिज्ञासा प्रवृत्ति को शान्त करने के लिए एक अति उत्तम विधि है। इसमें बच्चे का मस्तिष्क सक्रिय रहता है तथा वह विषय को गम्भीरता से समझ सकता है। इस विधि के प्रयोग से बालक में तार्किक शक्ति का विकास होता है जिससे वह उचित निर्णय लेने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। टैगोर तार्किक शक्ति के विकास के लिए वाद-विवाद तथा प्रश्नोत्तर विधि को ही उचित समझते हैं। टैगोर का विचार है कि दिन-प्रतिदिन के जीवन की समस्याओं को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना चाहिये तथा उन समस्याओं के समाधान के लिए विचार-विमर्श किया जाना चाहिये। इनका कहना है कि ज्ञान उस समय तक पूर्ण रूप से आत्मसात नहीं होता जब तक कि उस पर उचित ढंग से बातचीत एवं विचार-विमर्श न किया जाय। अपने कक्षा-शिक्षण में टैगोरने स्वयं विद्यार्थियों की बौद्धिक, तार्किक तथा काल्पनिक शक्ति का प्रयोग करके यथासंभव विद्यार्थियों के सम्मुख प्रासंगिक समस्याओं को रखकर तथा कुशल प्रश्नों के माध्यम से तर्क द्वारा उत्तर निकालने की परम्परा का अनुगमन किया।

टैगोर की प्रश्नोत्तर विधि आधुनिक ह्यूरिस्टिक पद्धति के समान है। जिसमे विद्यार्थियों को समस्या दे दी जाती है और वे स्वयं इसका हल निकालते हैं। इससे उनमें आत्मविश्वास की शक्ति जाग्रत होती है तथा बालक एक शोधकर्ता के समान कार्य करता है। ह्यूरिस्टिक शब्द का अर्थ है ''मैं स्वयं खोज करता हूँ''। यह विधि खोज करके स्वयं सीखने की विधि है। टैगोर ने अपने शिक्षण में इस विधि का प्रयोग किया। ये बालक को एक पौधे या कीड़े का, जन्म से अंत तक विश्लेषण करके विचार लिखने को कहते हैं।

## स्वाध्याय शिक्षण विधिः-

दार्शनिकों का विचार है कि सम्पूर्ण ज्ञान कक्षा में दिया जाना संभव नहीं है। समय के साथ-साथ विषय वस्तु में भी परिवर्तन होता रहता है। अतः निरन्तर नवीन ज्ञान की प्राप्ति करने हेतु स्वाध्याय अति आवश्यक है। इस विधि का महत्व आदि काल से आधुनिक काल तक सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता रहा है। टैगोर का विचार है कि बालक स्वयं क अनुभवों से शिक्षा ग्रहण करें। स्वाध्याय की आदत डालने पर ही व्यक्ति समाज की विभिन्न घटनाओं की जानकारी रख सकता है। इससे उसे समाज से सामंजस्य स्थापित करने में भी सहायता मिलती है।

टैगोर ने स्वतन्त्र प्रयासों एवं चिन्तन के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति को उचित माना तथा विचारहीन रटंत एवं चम्मच पद्धति का विरोध किया, जो वर्तमान शिक्षा पद्धति की विनाश का मूल है। इन्होंने कहा कि पुस्तकों तथा अध्ययनकर्ताओं को त्यागन के सच्चे प्रयास में ही शिक्षा है, जो जीवित एवं उपस्थित है। यह मात्रा ज्ञानोपार्जन की ओर ही नहीं बढ़ता अपितु एक सीमा तक जानने की शक्ति का भी विकास करता है, जो कक्षा-शिक्षण के माध्यम से कदापि सम्भव नहीं हो सकती।

## स्वप्रयास व स्वचिन्तन द्वारा सीखने की शिक्षण विधिः-

टैगोर का विचार है कि प्रचलित शिक्षण पद्धति जीवन विहीन होने के कारण अभावशील, अरूचिपूर्ण तथा अनुपयोगी हो गई है। प्रचलित विद्यालय शैक्षणिक उद्योग की भाँति बालक की आवश्यकताओं, रूचियों तथा अभिवृत्तियों पर ध्यान दिए बिना ही एक सी ही सामग्री उत्पन्न करते हैं। इन्होंने अपने शान्ति निकेतन में पाठ्यक्रम के साथ-साथ संस्कृति के अन्य अंगो, जैसे संगीत, कला, नृत्य व ऋतु त्यौहार व निकट के ग्रामों में समय-समय पर सहायता इत्यादि का भी आयोजन किया। इस विद्यालय में छात्रों को अपने विचारों को वे भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। साथ ही भावों के प्रकटीकरण से स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं जिसका माध्यम संगीत कला तथा अभिनय है। भारतीय शिक्षा शास्त्रियों में सर्वप्रथम टैगोर ने मनोवैज्ञानिक विधियों का अपने शिक्षण संस्थान में प्रयोग किया। इन्होंने स्वप्रयास तथा स्वचिन्तन द्वारा सीखने पर बल दिया। इनके अनुसार वही ज्ञान स्थायी रूप से बालकों के मस्तिष्क में रह सकता है, जो उनको स्वयं के प्रयत्नों एवं चिन्तन से प्राप्त हुआ है। इन्होंने लिखा है कि ''मुझे याद है जब मैं टीयरिंग क्रिया के विषय में अंग्रेजी की कक्षा में

पढ़ा रहा था उस समय मैंने प्रत्येक विद्यार्थी से पास के पेड़ पर चढ़कर वहाँ से पत्तियाँ तोड़ कर लाने को कहा था। इस प्रक्रिया में छात्रा का सम्पूर्ण शरीर कार्य करता है, तब शिक्षा जीवन्त हो जाती है।

## प्रकृति के सहयोग द्वारा सीखने की शिक्षण विधिः-

बालक के अवचेतन में ज्ञान की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए टैगोर ने व्यस्क व बालक की अधिगम विधियों की तुलना की। इनके अनुसार एक व्यस्क, मस्तिष्क की एकाग्रता के फलस्वरूप सीखता है। वह सफलता के लिए छोटा मार्ग चाहता है, इस कारण उपयोगिता के दृष्टिकोण से ज्ञान का चयन कर लेता है। इसके विपरीत, बालक प्रकृति के सम्पर्क से प्रत्यक्ष अनुभव अर्जित करता है। उसका पूर्ण शरीर व मन एवं समस्त इन्द्रियाँ ज्ञानार्जन हेतु सक्रिय रहती है वह सब प्रकार के ज्ञान को ग्रहण करने हेतु उत्सुक रहता है। वर्तमान शिक्षा अपने उपयोगितावादी दृष्टिकोण के कारण उससे वयस्क के समान व्यवहार की अपेक्षा करती है जोकि उसकी प्रकृति के विरूद्ध होने के फलस्वरूप उसमें असन्तोष व भग्नाशा को उत्पन्न करती है। टैगोर का विश्वास है कि प्रकृति-रहस्यों को जानने के लिए उसके साथ समरस होना पड़ता है, जो नग्न पैरों से पृथ्वी को स्पर्श करते हैं वे ही उसकी कठोरता, मृदुता, ऊँचाई व निर्वाह के रहस्यों से अवगत हो सकते हैं। प्रकृति से बालक को पृथक करके उसे प्रयोगशाला में अथवा कक्षा-कक्ष में पढ़ाना इन्हें अनुचित लगता है। इनके शब्दों में ''बालक को भूगोल पढ़ाने के लिए उसकी सहज भाषा उससे छिन्न-भिन्न कर देते हैं। उसकी भूख काव्य के लिए है किन्तु सम्मुख केवल तथ्यों और तिथियों से भरे पूरे अभिलेख प्रस्तुत कर दिए जाते हैं। बालक जन्म तो लेते हैं जगत में, किन्तु उन्हें बेजान ग्रामोफोन के जगत में ढकेल दिया जाता है।''

टैगोर चाहते हैं कि बालक की शिक्षा प्राकृतिक ढंग से प्राकृतिक वातावरण में होनी चाहिये। बच्चों को ऐसी शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा मिलनी आवश्यक है जहाँ मनुष्य और प्रकृति में घनिष्ठ संपर्क पैदा होता है, जहाँ केवल प्रेम का ही राज्य न हो, वरन् स्वच्छंद क्रियाशील घनिष्ठ संपर्क भी हो। इसी प्रेरणा के कारण टैगोर का शान्तिनिकेतन अनुपम प्राकृतिक वातावरण में स्थापित हुआ।

टैगोर, मनुष्य और प्रकृति में मूलभूत एकता के दर्शन करते हैं। इसलिए बालकों की शिक्षा की व्यवस्था प्राकृतिक वातावरण में आवश्यक समझते हैं। प्रकृति के सम्पर्क में आने से बालक संसार के संपर्क में आता है। इससे बालक में संपर्क स्थापित करने की क्षमता पैदा होती है। टैगोर के शब्दों में ''बच्चे अपनी ज्ञानेन्द्रियों की ताजगी से विश्व से सीधा परिचय प्राप्त कर सकते हैं। यह उनके लिए पहली भेंट है। वे पुनः इस संपर्क शक्ति को नहीं खोते और निरन्तर परिचय बढ़ाते रहत हैं। टैगोर ने इसी कारण भारत के प्राचीन आश्रमों और गुरूकुलों को महत्वपूर्ण माना। ये संस्थाएँ बालक का प्रकृति से घनिष्ठ संपर्क स्थापित करती है। प्रकृति का टैगोर पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उन्होंने कहा कि मैं विश्वास करूँगा कि यह (प्रकृति) बालकों के लिए सर्वोत्तम पुस्तक है जो सदैव से लिखित है।

टैगोर प्रकृति के माध्यम से विश्व के साथ एक सम्बन्ध स्थापित करने पर बल देते हैं। व्यक्ति जब हमारी संसार से अपना संपर्क स्थापित नहीं करता, वह सीमित दुनिया की चार दीवारी में घिरा रहता है। वह कैदी जैसा जीवन व्यतीत करता है। नगर का जीवन विश्व संपर्क पैदा नहीं कर सकता, यह प्राकृतिक वातावरण द्वारा ही संभव है। प्रकृति का सौन्दर्य, उसके विविध रंग, पशु-पक्षी और पुष्प बच्चे को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

इससे बालक में स्वतन्त्रता के लिए प्रेम उत्पन्न होता है जिससे बालक में आत्म क्रिया को बल मिलता है और उसे मनुष्य व प्रकृति के मध्य में संपर्क की अनुभूति होने लगती है। इस प्रकार टैगोर के अनुसार शिक्षा का सर्वोत्तम साधन प्रकृति का सहयोग ही है। इससे बालक आनन्द प्राप्त करते हुए अवचेतन मन से ही सीख लेता है जबकि शिक्षकों और पुस्तकों की सहायता से चेतन मन द्वारा शिक्षा प्राप्त की जाती है।

टैगोर की शिक्षण विधियों का अध्ययन करने के पश्चात् उनकी शिक्षण विधियों में निम्न विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं:-

एक प्रकृतिवादी होने के कारण टैगोर ने बालक को शिक्षा के क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता दी। इनका कहना है, ''प्रकृति माँ जानती है कि बालक के मस्तिष्क को विकसित करने का सर्वोत्तम तरीका स्वतन्त्रता ही है। इन्होंने अपनी विचारधारा में एक ऐसे वातावरण की अपेक्षा रखी है, जिससे बालक निष्प्राण मूर्तियों की तरह न रहकर सक्रिय रचनात्मक कार्य करें, अपने लिए स्वयं ज्ञान कूप खोदें, पानी भरें तथा पीएँ। इस कार्य में अध्यापक उसका पथ प्रदर्शन करते रहें। साथ ही इन्होंने यह भी कहा कि ''कहीं का सव विकसित सौन्दर्य ऐसा अनिघ होता है कि किसी के कठोर हाथों से बलपूर्वक खोली गई पंखुडियों का विकास उसकी तुलना कदापि नहीं कर सकता। अतः अनिवार्य है कि हम छात्रों की विकसित तथा अर्धविकसित कलियों को प्रकृति के आत्मीयतापूर्ण प्रातः समीर के सहारे खिलने को छोड़ दें। ऐसे फूल रंग में तो दूसरों से ड्योढ़े होंगे ही, साथ ही उसकी सुगन्ध भी मोहक और अधिक समय तक टिकने वाली होगी।

## शिक्षा का माध्यम मातृभाषा :-

टैगोर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने के पक्षधर हैं। इनका विश्वास है कि सामान्य जनता को मात्रा मातृभाशा के माध्यम से ही शिक्षा प्रदान करना सम्भव है क्योंकि लाखों लोगों को विदेशी भाषा सीखने की आवश्यकता नहीं है। सामान्य जनता को श्रेष्ठ विचार मातृभाषा में ही दिये जा सकते हैं । क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह विस्तार तथा गहराई से बहती है। टैगोर के अनुसार, यदि सामान्य जनता की शिक्षा उच्च स्तर की है तो उस राष्ट्र में उच्च शिक्षा फले फूलेगी, क्योंकि सामान्य जनता उच्च स्तर पर ऐसी शिक्षा को पोषित करेगी तथा संस्कृति की सामान्य धारा सामान्य जनों के जीवन की नसों व आँतों में बहकर जायेगी। इसके विपरीत यदि मूल धरती शुष्क है तो वृक्ष की शाखायें थोड़े समय में ही सूख जाएंगी।

टैगोर के अनुसार पाठय पुस्तकें मातृभाषा में होनी चाहिये तथा विश्वविद्यालय अधिकारियों को मातृभाषा में पुस्तकें लिखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिये। चाहे वे अंग्रेजी की उच्च स्तर की पुस्तकों का अनुवाद ही क्यों न हो। उच्च शिक्षा को मातृभाषा के माध्यम से प्रदान करने की नीति अपनानी चाहिये। शिक्षा पद्धति की वास्तविक आवश्यकताओं से पाठय पुस्तकें प्रेरित होती हैं यदि शिक्षण पद्धति पहले पाठय पुस्तकों के छप कर आने की प्रतीक्षा करेगी तब वृक्ष; पत्तों के आने की प्रतीक्षा कर सकता है और नदी; किनारे की प्रतीक्षा कर सकती है। टैगोर ने कहा कि यदि विश्वविद्यालय एक बार शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा को मान्यता प्रदान कर देते हैं तो उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें मातृभाषा में तत्परता से निकलने लगेगी। टैगोर ने हैदराबाद में उस्मानिया विश्वविद्यालय का उदाहरण देते हुए संकेत किया, जिसने साहस करके उर्दू को विश्वविद्यालय के उच्च स्तर तक शिक्षा के माध्यम के रूप में आरम्भ किया।

टैगोर ने शांतिनिकेतन में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के विचार को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। टैगोर के अनुसार प्रारम्भिक स्तर से मातृभाषा सुदृढ़ नीव तैयार करती है तथा यह उच्च शिक्षा एवं अन्य भाषाओं की संरचना को ऊपर उठाने के लिए भी आवश्यक है। मातृभाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति की प्रचुर प्रेरणा अनेक सर्जनात्मक क्रियाकलापों में विद्यार्थियों को रचना की शक्ति का प्रोत्साहन प्रदान करती है।

टैगोर ने ''शिक्षार हेरफेर'' में वर्तमान शिक्षण पद्धति में अंग्रेजी को बचपन से ही अनिवार्य विषय बनाने तथा हाईस्कूल व विश्वविद्यालय स्तर तक अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के विरूद्ध एक शक्तिशाली आंदोलन

www.ignited.in

चलाया। क्योंकि भारतीय बालकों के लिए अंग्रेजी एक विदेशी भाषा है और अकुशल अध्यापक तथा दोषपूर्ण शिक्षण-विधियाँ इसकी कठिनाईयों को और अधिक बढ़ा देती हैं जिससे शिक्षण प्रक्रिया आरम्भ से ही आनन्द विहीन बन जाती है। टैगोर का कहना है, ''अंग्रेजी; व्यापार में काम आने वाली भाषा है। यह अपने भावों और विचारों को प्रकट करने वाली भाषा नहीं हो सकती।'' इनके अनुसार विदेशी भाषा पर अत्यधिक बल तथा उसे माध्यम बनाने से हमारी शिक्षा अवास्तविक हो जाएगी तथा वह विद्यार्थियों की प्रारम्भिक आवश्यकताओं एवं परिचित वातावरण से सम्बद्ध नहीं रहेगी।

अंग्रेजी पर अत्यधिक बल देने से गम्भीर क्षति यह हुई कि इसने जन समूह को दो वर्गों में विभाजित कर दिया। एक अंग्रेजी अध्ययन करने वाले तथा इसके न करने वालों में। जिससे समाज में एक प्रभावशाली वर्ग का निर्माण हो गया और देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में इस विभाजन व विखण्डता के द्वारा दुःखद जटिलताएँ पैदा हो गयी। इसलिए टैगोर इस बात के पक्षपाती हैं कि राष्ट्र के शिक्षित वर्ग को पश्चिम के विज्ञानों एवं विश्व के अन्य भागों की सर्वोत्कृष्ट संस्कृति को विदेशी भाषा के माध्यम से पूर्व तथा समझ लेनपा चाहिये। इस प्रकार देश में दो वर्गों के मध्य जो चौड़ी खाई पैदा हो गयी है उसे दूर किया जा सकता है तथा जनसामान्य के मस्तिष्क को उन्नत किया जा सकता है। विज्ञान एवं इतिहास का शिक्षा उच्च कक्षाओं में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से होने के कारण सामान्य जनों की शिक्षा का अंग नहीं बन सका।

''शिक्षार हेरफेर'' में टैगोर ने कहा कि यद्यपि अंग्रेजी भाषा का भारत में आरम्भ से ही अध्ययन किया गया। परन्तु इस भषा में कोई महत्वपूर्ण कार्य प्रस्तुत नहीं किय गया। स्थायी महत्व का जो साहित्य लिखा गया वह भारतीय भाषाओं में ही प्रकाशित हुआ। टैगोर के अनुसार इसका कारण यह था कि अंग्रेजी हमारे लिए एक व्यवसाय की भाषा थी, न कि अपने विचारों एवं आवेगों की अभिव्यक्ति की। विचार एवं परम्परायें, विचारधारायें और मन की कल्पनायें, जिन्होंने हमारे मस्तिष्क को स्पष्ट मोड़ दिया है, कई शताब्दियों में भी विदेशी भाषा के माध्यम से पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकती। टैगोर ने कहा कि शिक्षित लोगों में सच्चा मानसिक विकास अनेक वर्षों तक अंग्रेजी शिक्षा के अध्ययन करने के पश्चात भी नहीं हुआ और न ही अंग्रेजी में कोई विशेष कार्य हुआ। जिसे विश्व साहित्य अथव ज्ञान के विश्वकोष में स्थायी योगदान माना जा सके। जिसका कारण यह है कि कोई भी दूसरे की खाल में स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं घूम सकता, क्योंकि विदेशी भार हरकदत पर उन्नति को अवरूद्ध करता है।

अंग्रेजी भाषा के द्वारा कुछ निरर्थक सफलतायें अवश्य प्राप्त हुई, परन्तु बिना विदेशी भाषा के और अधिक सफलतायें प्राप्त की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त वे सफलतायें छोटे वर्ग तक ही सीमित थी तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए सच्ची नहीं थी। इसलिए किसी भी विकसित देश ने भारतीयों की भाँति बचपन से विदेशी भाषा को सीखने एवं विचारने के बोझे को नहीं ढ़ोया। इस पंगु प्रतिबंध ने राष्ट्र के मस्तिष्क को बोना कर दिया। यदि विचार किया जाए कि भारतीय छात्रों ने कभी भी मौलिकता प्रदर्शित क्यों नहीं की। इसका उत्तर कुछ अंग्रेज प्रोफेसरों के विचारों से प्राप्त होता है। उनके अनुसार मौलिकता तब तक प्राप्त नहीं की जा सकती जब तक कि मस्तिष्क का प्राकृतिक वातावरण में स्वतन्त्र गति एवं स्वन्तत्रातापूर्वक विकास नहीं होगा। वास्तव में मौलिकता एक अतिरिक्त उत्पादन है।

टैगोर का विचार है कि विदेशी माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की एक बड़ी कमी यह है कि वह अभिव्यक्ति में रूकावट डालती है। विचारों की अभिव्यक्ति अच्छी शिक्षा का एक अंग है। अभिव्यक्ति की क्रिया याद की हुई विषम सामग्री को पचाने में सहायता करती है और अधिक स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का कार्य विदेशी भाषा के माध्यम से सम्भव नहीं है। विदेशी भाषा के द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं है अपितु वह तो विदेशी नकल के माध्यम की अभिव्यक्ति है। माइकल मधुसूदन दत्त एवं बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति, जिनका अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार था, वे भी अंग्रेजी भाषा के नकाब के माध्यम से अपने विचारों को संतोषजनक ढंग से अभिव्यक्त करने में असफल हो गये और उन्होंने विदेशी भाषा के नकाब को उतार फेंका।

टैगोर ने स्पष्ट किया कि साहित्यिक रचना की कला स्वयं में एक कठिन कला है। यदि विदेशी भाषा के भार की उसमें ओर वृद्धि हो जाए तो उसे पंगु होने का भय हो जाता है। इसके विपरीत अपनी मातृभाषा में यदि एक बार साहित्यिक रचना करने का अभ्यास कर लिया तो उसके रचना करना सरल हो जाएगा तथा वह अन्य भाषा को भी सीखने का साहस जुटा सकेगा और निःसंकोच लिख सकेगा। अपना व्यक्तिगत उदाहरण प्रस्तुत करते हुए टैगोर ने विनम्रतापूर्वक बताया कि अंग्रेजी भाषा पर उनकी जो पकड़ बनी उसका कारण प्रचुर मात्रा में रचनाओं का अभ्यास करना था। लेकिन कभी भी उनके अंग्रेजी ज्ञान को सभ्य समाज में लज्जित नहीं किया गया। जबकि बचपन से इनके मस्तिष्क का विकास शुद्ध मातृभाषा द्वारा पोषित था जिसमें प्रचुर मात्रा में जीव तत्व था जिसे रचनाकार ने जादुई शक्ति से परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार से मातृभाषा की कीमत पर हम विदेशी भाषा के माध्यम से सीखना आरम्भ करें तो दोहरी हानियाँ होंगी। इससे मातृभाषा का ज्ञान तो कमजोर होगा ही, विदेशी भाषा का भी पूर्ण ज्ञान न हो पायेगा।

यद्यपि टैगोर ने सदैव ही मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के विचार को प्रोत्साहन दिया तथापि इन्होंने भारत में अंग्रेजी भाषा के महत्व को भी कम करके नहीं आँका। 1893 के आरम्भ में ''शिक्षार हेरफेर प्रबंधर'' में टैगोर ने इस विचार का प्रतिकार किया कि वे भारतीय विद्यालयों में अंग्रेजी के अध्ययन के विरूद्ध रहे। इन्होंने पश्चिमी विज्ञान के सम्पर्क में आने के लिए युगों पुराने अपने राष्ट्रीय मस्तिष्क तथा अंधविश्वासों से छुटकारा पाने के लिए तथा विश्वसंस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने तथा अपने राष्ट्र की समृद्धि के लिए अंग्रेजी के महत्व पर बल दिया। इसलिए इन्होंने कहा कि हमें स्वीकार करना होगा कि हमारे विश्वविद्यालयों को अंग्रेजी भाषा के द्वारा जो सम्मान प्राप्त हुआ है वह कभी भी नष्ट नहीं होना चाहिये। ऐसा केवल इसके संकीर्ण उपयोगी मूल्य के कारण नहीं अपितु इसके महान सांस्कृतिक मूल्यों के कारण तथा आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में आत्संरक्षण के लिए भी आवश्यक है। टैगोर चाहते हैं कि अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त दूसरी विदेशी भाषायें जैसे जर्मन, फ्रैंच आदि का ज्ञान भी विद्यार्थियों को प्राप्त करना चाहिये। टैगोर इस तथ्य से पूर्णतया अवगत है कि मातृभाषा को उच्च शिक्षा में पूर्णरूपेण माध्यम बनाना अस्वाभाविक एवं अव्यावहारिक है। अतः इन्होंने विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम के विभाजन का सुझाव दिया, एक विद्यालय पाठ्यक्रम उनके लिए जो अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षा ग्रहण करने के इच्छुक है और दूसरा उनके लिए जो पूर्णरूपेण मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। नियमित पाठ्यक्रम के समानान्तर ही उनके लिए पाठ्यक्रम चले, जिन्होंने अंग्रेजी नहीं सीखी।

## निष्कर्ष :-

टैगोर के अनुसार ''आज भी हमारे देश में शिक्षारूपी पिरामिड का उच्चतम बिन्दु सबसे नीचे के धरातल पर निर्भरत करता है। यदि इसे उच्च शिक्षा मानते हैं तो उच्च शिक्षा का भी नुकसान हो रहा है। क्योंकि एक संख्या में विद्यार्थी उस उच्च शिखर तक पहुँचने के प्रयास में अपनी सभ्यता व शिक्षा को समाप्त कर देते हैं क्योंकि जब उस कल्पतरू का

आधार ही शुष्क है तो वृक्ष का ऊपरी हिस्सा भी ऐसी हालत में शुष्क ही हो जाएगा।

## सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची


1. सूद, विजय (1991), आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा, भारत बुक सैन्टर : लुधियाना।

2. भाटिया, के.के. नारंग, सी.एल. (1984), शिक्षा के सिद्धांत तथा विधियां, प्रकाश ब्रदर्स, लुधियाना।

3. वालिया, जे.एस. (2007), शिक्षा के सिद्धांत तथा विधियां, पाल पब्लिशर्स, जालन्धर।

4. पाठक, पी.डी. (1977), भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

5. शर्मा, आर.ए. (2006), शिक्षा अनुसंधान, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।

6. पाण्डेय, रामशक्ल (2007), उभरते हुये भारतीय समाज में शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

7. मित्तल, एम.एल. (2006), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ।

8. सक्सेना, सरोज (2007), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

9. राधाकृष्ण (2007) : "दा फिलासफी ऑफ आर. एन. टैगोर" मैकमिलन एण्ड कम्पनी इण्डिया लि0, 2005

10. वर्मा, वैधनाथ प्रसाद (2005): " विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, "विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना।

11. बनर्जी, हीराण्यमय (2001) : "बिल्डर्स ऑफ मौडर्न इण्या, रवीन्द्रनाथ टैगोर" पब्लिकेशन डिवीजन : मिनिस्टरी ऑफ इनफोरमेशन एण्ड ब्रोडकास्टिंग" 2005

12. कालेलकर, काकासाहब (2001) "युगमूर्ति रवीन्द्रनाथ टैगोर "कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर,।

13. सरकार, भूपेन्द्रनाथ (2011) : "टैगोर दा एजूकेटर" एकेडमिक पब्लिशर्स, 5 ए, भवानी दत्तलेन, कलकत्ता।

14. दत्त, हिरेन्द्रनाथ (2005) "लेस्ट वी फॉरगेट", विश्वभारती न्यूज सिल्वर जुबली नम्बर,।